सद्गुरवे नमः

वैराग्य त्रिवेणी

तुलसी वैराग्य संदीपनी

आठवां प्रवचन

गोस्वामी जी की एक छोटी-सी पुस्तक है वैराग्य संदीपनी, उस पर आज से कहा जायेगा है।

राम बाम दिसि जानकी, लषन दाहिनी ओर।
ध्यान सकल कल्यानमय, सुर तरु तुलसी तोर॥ 1॥

यह वैराग्य संदीपनी है। इसलिए गोस्वामी जी वंदना और स्मृति में राम का वह रूप लेते हैं, जो जंगल में रहा है। राम के बांये जानकी हैं, और लक्ष्मण दाहिनी तरफ हैं। ये तीनों अयोध्या से निकल कर जंगल को गये और उन्होंने चौदह वर्ष तक तप किया। यह वैराग्य का लक्षण है। इसलिए गोस्वामी जी इस रूप को लेकर वंदना करते हैं कि श्रीराम की बांये तरफ जानकी जी हैं और दाहिनी तरफ लक्ष्मण हैं। यह ध्यान सब भांति से कल्याणमय है। ऐ तुलसी, तुम्हारे लिए तो यह कल्पवृक्ष है।

तुलसी मिटै न मोह तम, किये कोटि गुन ग्राम।

हृदय कमल फूलै नहीं, बिनु रवि कुल रवि राम॥ 2॥

गोस्वामी जी कहते हैं कि चाहे करोड़ों गुणों का समूह इकट्ठा कर लो, बड़े सद्‌गुणी हो जाओ। लेकिन रवि कुल में उत्पन्न रवि राम सूर्यवंशी श्री राम के बिना हृदय कमल नहीं खिलेगा।

सुनत लखत श्रुति नयन बिनु, रसना बिनु रस लेत।
बास नासिका बिनु लहै, परशै बिना निकेत॥ 3॥
अज अद्वैत अनाम, अलख रूप गुण रहित जो।
मायापति सोइ राम, दास हेतु नर तन धरेउ॥ 4॥

जो कानों के बिना सुनता है, नेत्रों के बिना देखता है, जीभ के बिना रस चखता है, नासिका के बिना गंध ग्रहण करता है और शरीर के बिना स्पर्श करता है; जो अजन्मा है, अद्वैत है, अनाम है, अदृश्य है, रूप और गुणरहित है, वही मायापति ब्रह्म दशरथ-पुत्र श्रीराम है। उसने भक्तों के उद्धार के लिए देह धारण किया है।

उपर्युक्त कथन गोस्वामी जी की भावना है। ऐसी जगह के लिए सद्‌गुरु कबीर ने कहा है–

राम बियोगी बिकल तन, इन्ह दुखवो मति कोय।
छूवत ही मरि जायेंगे, ताला बेली होय॥ बीजक, साखी 98॥

तुलसी यह तन खेत है, मन वच कर्म किसान।
पाप-पुण्य द्वै बीज हैं, बवे सो लवै निदान॥ 5॥

यह शरीर खेत है और इसमें मन, वचन और कर्म किसान हैं। पाप-पुण्य के दो बीज हैं। जो बोया जायेगा, वही अंत में काटा जायेगा।

शरीर खेत है; मन, वचन और कर्म किसान हैं। इसमें विचारणीय यह है कि मन, वचन और कर्म कर्ता नहीं हैं। क्योंकि कर्ता स्वतंत्र होता है। मन, वचन, कर्म बिना कर्ता के कुछ नहीं कर सकते हैं। इन सबका कर्ता जीव है; इसलिए जीव किसान है। मन, वचन, कर्म को प्रेरणा देने वाला जीव ही किसान है। पाप-पुण्य बीज हैं। खेत में जो बीज डाले जायेंगे उन्हीं के पौधे उगेंगे, फल-फूल निकलेंगे। यदि पाप किया गया तो दुख

पैदा होगा और पुण्य किया गया तो सुख पैदा होगा। इसलिए मनुष्य को सावधान रहना चाहिए कि मन से, वचन से, कर्म से पाप के बीज न बोये। क्योंकि आदमी की सफलता-असफलता इसी पर निर्भर है। आदमी सही मार्ग में चलता है कि गलत मार्ग में यह उस पर निर्भर करता है। यदि गलत मार्ग पर चलता है तो असफल है, और सही मार्ग पर चलता है तो सफल है। इसलिए सावधानी से कर्म करना चाहिए।

तुलसी यह तन तवा है, तपत सदा त्रय ताप।
सांत होय जब सांति पद, पावै राम प्रताप॥ 6॥

यह शरीर तवा के समान है, जो सदैव तीनों तापों में तपता रहता है। जैसे चूल्हे पर रखे हुए तवा में नीचे से आंच लग रही है, और उस पर रोटी सेंकी जाती है। वह हर समय तपता रहता है। शरीर की दशा भी यही है। भूख-प्यास, ठंडी-गरमी, हर्ष-शोक, हानि-लाभ, मिलन-वियोग, रोग-व्याधि, इन तापों में तवा के समान यह शरीर निरंतर तपता रहता है। गोस्वामी जी कहते हैं कि शीतलता मिलेगी, शांति मिलेगी, जब राम की कृपा होगी। अब राम किसी पर कृपा करे और किसी पर कृपा न करे, ऐसा क्यों? वास्तव में अपनी दृष्टि का सुधरना ही राम की कृपा है। जब हम अपने पर कृपा करें, अपने दोषों को छोड़ें तभी इस शरीर का ताप मिटेगा और शांति मिलेगी।

तुलसी वेद पुरान मत, पूरन सास्त्र विचार।
यह विराग संदीपनी, अखिल ज्ञान को सार॥ 7॥

वेद, पुराण और सभी शास्त्रों का विचार कर लिया गया, उसके पश्चात इस वैराग्य संदीपनी की रचना की गयी। यह संपूर्ण ज्ञान का सार है।

संत स्वभाव वर्णन

सरल बरन भाषा सरल, सरल अर्थ मय मानि।
तुलसी सरलै संत जन, ताहि परी पहिचान॥ 8॥

इस वैराग्य संदीपनी ग्रंथ के वर्ण और भाषा सरल हैं। वर्ण नाम अक्षर। इसके अक्षर सरल हैं। जैसे वैराग्य नहीं, बैराग है, शांति नहीं सांति है। ग्रामीण लोग जिस ढंग से बोलते हैं उस ढंग से शब्द रखा गया है। और इसकी भाषा भी सरल है। इसमें कोई साहित्यिक और दार्शनिक शब्दों का प्रयोग नहीं किया गया है। **सरल अर्थ मय मानि।** इसका अर्थ भी सरल है। **तुलसी सरलै संत जन।** गोस्वामी जी कहते हैं संत भी सरल होते हैं। **ताहि परी पहिचान।** उन्हीं के पहचानने में यह बात आयेगी।

जो सरल होते हैं, वे संत की बातों पर ध्यान देते हैं। बहुत से लोग तो इसी चक्कर में रहते हैं कि इसकी भाषा कैसी है? शैली कैसी है? भला उन्हें बात कैसे पहचानने में आयेगी। संतजन सरल होते हैं और सरल बातों पर ध्यान देते हैं। लोग भाषा शैली के ही चक्कर में रहते हैं। एक व्यक्ति ने कहा था कि यह नहीं देखा जाता है कि कहा क्या गया है। किन्तु कैसे कहा गया है, इसका मूल्य है। तब मैंने कहा–हां, यह बात नहीं है कि जिंदा है कि मुरदा है, किन्तु उसका शृंगार कैसा है, इसका महत्त्व है। तो वह लज्जित हो गया। इसलिए क्या कहा गया है, इसका मूल्य है। कैसे कहा गया है, इसका भी मूल्य है, लेकिन क्या कहा गया है, इसका महत्त्व ज्यादा है। "घी के लड्डू टेड़ो बेड़" यह अवध क्षेत्र में कहावत है। घी से बना हुआ लड्डू टेढ़ा भी है तो भी वह मिष्ट, पुष्टकर और हितकर है। इसी प्रकार कथन कल्याणकारी और हितकर है तो उसका महत्त्व हमारे लिए ज्यादा है।

अतिसीतल अति ही सुखदाई। समदम राम भजन अधिकाई।
जड़ जीवन को करैं सचेता। जग महँ विचरत हैं यहि हेता॥ 9॥

वैराग्य संदीपनी में गोस्वामी जी पहले अपने विश्वास के अनुसार वंदना करते हैं, उसके बाद शरीर के ताप इत्यादि को बताते हैं। फिर उन्होंने यह बताया कि यह ग्रंथ सरल रूप में कहा गया है, और वह वेद-शास्त्र आदि का सार है। उसके पश्चात वे पूरे ग्रंथ में दो विषय को लेते हैं, वह है संत-स्वभाव और शांति। संतों का स्वभाव क्या होना चाहिए, रहनी, आचरण कैसे होना चाहिए और शांति क्या है? इन दो विषयों पर वे प्रकाश डालते हैं।

अति सीतल अति ही सुखदाई। संत बड़े शीतल होते हैं और सुखदाता होते हैं। जो शीतल होगा वही सुख देगा। जिसके मन में अहंकार नहीं है, विकार नहीं है, कोमल वाणी है, कोमल व्यवहार है और किसी से कुछ चाहना नहीं है, उससे ही सबको सुख मिलता है। उसके सिवा और कहां से सुख मिलेगा? हां, उनसे दुष्ट को सुख नहीं मिलता है। दुष्ट तो उन्हें देखकर और दुखी हो जाते हैं। लेकिन जब उनकी दृष्टि घूमती है तो वे भी सुखी होते हैं, क्योंकि सच्चे संत अति शीतल होते हैं और अति सुखदायी होते हैं।

समदम राम भजन अधिकाई। वे मन-इन्द्रियों को वश में रखते हैं। मन को वश में रखना शम है और इन्द्रियों को वश में रखना दम है। **राम भजन अधिकाई।** वे सच्चे रामभजन में लीन रहते हैं। गोस्वामी जी के राम दशरथ सुवन हैं। उन्होंने मानस में बारम्बार कील ठोंका है और अपनी मान्यता को खीझ-खीझकर कहा है कि जो राम को परमात्मा नहीं मानता है, वह बिना सींग-पूछ का पशु है, अवैदिक है आदि। लोग श्री राम को परमात्मा नहीं मानते थे। उन्हें चिढ़ाते थे कि वह दशरथ का लड़का है, जिसको आप भजते हैं, जो सीता के लिए रोते थे, वन-वन खोजते थे, उसी को आप भजते हो। तो वे चुप हो जाते थे। तब फिर वे उपोद्घात बांधते थे शिव-पार्वती, काकभुशुण्डि-गरुड़ तथा याज्ञ्यवल्क्य भरद्वाज का और कहते थे कि श्री राम ही अनन्त ब्रह्माण्ड नायक हैं। किन्तु अंत में वे थक कर कहते हैं-"अस प्रभु हृदय अछत अविकारी" हृदय में बसने वाला राम ही अविनाशी और अविकारी है। क्योंकि श्रीराम का शरीर नहीं है, उनसे मिलने का कोई साधन नहीं है, और मिल भी जायें तो अलग रहेंगे, बिछुड़ जायेंगे। लेकिन जो स्वयं राम है, अपने आप में रमा है, अपना स्वरूप है, वह कभी नहीं बिछुड़ेगा। उसी में विश्राम है।

अगर हम कहें कि हे अवधेश! कृपा करो। तो अवधेश को अयोध्या से चलना होगा। अयोध्या से इलाहाबाद के लिए ट्रेन पकड़ना होगा। जब यहां उतरेंगे तब प्लेटफार्म से बाहर आकर टेम्पो पकड़ेंगे और टेम्पो से धूमनगंज उतरेंगे। फिर वहां से पैदल आयेंगे, तब यहां कबीर आश्रम पहुंचेगे। और अगर हम कहें कि हे हृदयेश! कृपा करो। तब हृदय में रहने वाला राम, तो वह स्वयं ही है। अतः राम भजन है जो हृदय निवासी है,

निजस्वरूप है, उसमें स्थित होना, विश्राम पाना। निजस्वरूप में विश्राम पाना ही सच्चा राम भजन है।

जड़ जीवन को करैं सचेता। जग महँ विचरत हैं यहि हेता। संतजन जगत में क्यों विचरण करते हैं? क्योंकि वे जड़ जीवों को, जड़ीभूत लोगों को सचेत करते हैं, जगाते हैं। आसक्त लोगों को जगाते हैं, सावधान करते हैं कि आसक्ति छोड़ो, नहीं तो दुख में पड़े रहोगे। संतजन जड़ जीवों को जगाते हुए विचरते हैं किन्तु वे दुनिया से निष्काम रहते हैं।

तुलसी ऐसे कहुँ कहूँ, धन्य धरनि वह संत।
परकाजे परमार्थी, प्रीति लिए निबहंत॥ 10॥

गोस्वामी जी कहते हैं कि ऐसे संत कहीं-कहीं मिलते हैं। वे संत धन्य होते हैं। वह पृथ्वी धन्य होती है, जहां संत रहते हैं। वे पर के उपकार के लिए अपने जीवन को समर्पित कर देते हैं, तथा वे समर्पित लोगों को निभाते हैं। वे परमार्थ में लीन रहते हैं और लोगों को परमार्थ की तरफ प्रेरित करते हैं।

की मुख पट दीन्हें रहैं, यथा अर्थ भाषंत।
तुलसी या संसार में, सो विचार युत संत॥ 11॥

संसार में विचारवान संत वे हैं जो या तो मुख का किवाड़ बंद रखते हैं, या उपयुक्त और विवेक-विचारपूर्वक ज्ञान की बातें बोलते हैं। या तो वे मौन रहेंगे या बोलेंगे तो विवेकपूर्वक। वे व्यर्थ नहीं बोलते। संत का मुख्य लक्षण है शांत रहना, मौन रहना और बोलना तो विवेकपूर्वक बोलना। कबीर साहेब भी कहते हैं "मौन रहे कि हरि यश गावै।"

बोले वचन विचारि के, लीन्हें संत स्वभाव।
तुलसी दुख दुर्वचन के, पंथ देत नहिं पांव॥ 12॥

गोस्वामी जी कहते हैं, संत जब बोलते हैं तो पहले हृदय में विचार लेते हैं। बिना विचारे वे नहीं बोलते। साथ-साथ शील स्वभावसहित

कोमल वाणी बोलते हैं। संत का हृदय कोमल होता है। वे किसी को कष्ट नहीं पहुंचाते हैं। वे भूलकर भी अहंकार-ममकार में नहीं पड़ते हैं। दुर्वचन दुख का रास्ता है। उस रास्ते पर वे पैर नहीं रखते। दुर्वचन कहोगे तो तुम क्षुब्ध हो जाओगे और फिर दूसरे को क्षुब्ध करोगे। अपना उद्वेगित होना, दूसरे को उद्वेगित करना विवेक नहीं है। अतएव वे स्वयं उद्वेगित नहीं होते हैं, और दूसरे को उद्वेग नहीं पहुंचाते हैं। यही सच्चे संत का लक्षण है।

शत्रु न काहू करि गने, मित्र गनै नहिं काहि।
तुलसी यह मत संत को, बोलै समता माहि॥13॥

संतजन न तो किसी को शत्रु मानते हैं, और न मित्र मानते हैं। वे समता में रहते हैं और समता के वचन कहते हैं। विवेक से देखा जाय तो यहां कौन शत्रु और कौन मित्र है। किसी का साथ नित्य नहीं है। इसलिए संत इस बात को चित्त में रखकर सबको सम दृष्टि से देखते हैं।

अति अनन्य गति इन्द्री जीता। जाको हरि बिनु कतहुँ न चीता॥
मृग तृष्णा सम जग जिय जानी। तुलसी ताहि संत पहिचानी॥ 14॥

अनन्य में दूसरे की गुंजाइश नहीं हो सकती। उसमें भी उन्होंने अति विशेषण लगाया है। यानी दूसरे की अपेक्षा-उपेक्षा से रहित ऐसी गति, ऐसी स्थिति, ऐसी उच्चदशा जिसमें दूसरा माया-मोह न हो। जिन्होंने इन्द्रियों को पूर्ण रूप से जीत लिया है। उनका चित्त केवल हरि में लगा रहता है। सदैव आत्मलीन। जिन्होंने मन में जगत को मृगतृष्णा के समान समझ लिया है। मृगतृष्णा शब्द एक कोडवर्ड की तरह है। कहा जाता है कि हिरण धूप की लहरियों को पानी समझकर दौड़ता है, वहां पानी मिलेगा। आगे पानी मिलेगा, ऐसा सोचकर दौड़ते-दौड़ते गिर पड़ता है और मर जाता है, किन्तु पानी कहीं नहीं मिलता। हर प्राणी की दशा यही है। आदमी जब से होश में आता है तब से सुख के लिए दौड़ता है, सुख के लिए सारा आयोजन करता है और दौड़ते-दौड़ते मरता है किन्तु सुख कहीं नहीं पाता। विषयों में सुख की कल्पना मृगतृष्णा है। संतजन सारे विषय सुख को मृगतृष्णा के समान समझते हैं। इसमें पड़कर कहीं शांति न मिलेगी। अगर कोई अपनी

शांति के लिए कहे कि मैं मठ बनवाऊंगा, चेला बटोरूंगा, प्रचार करूंगा तो यह भी मृगतृष्णा है। अपनी शांति के लिए तो बोध-वैराग्य और भक्ति साधन है। मठ-मंदिर, शिष्य-शाखा, प्रचार-प्रसार आदि लोक हित के लिए है। निष्काम भाव से लोक हित किया जाय तो उसका भी पुण्य-प्रताप अच्छा होगा। अच्छे संस्कार होंगे। लेकिन प्रचार-प्रसार को उपलब्धि मानना मृगतृष्णा ही है।

एक भरोसो एक बल, एक आस विश्वास।
राम रूप स्वाती जलद, चातक तुलसी दास॥ 15॥

राम ही का एकमात्र भरोसा है, उन्हीं का बल, आशा और विश्वास है। रामरूप ही स्वाति नक्षत्र का बादल है और तुलसीदास उसका चातक है।

सो जन जगत जहाज है, जाके राग न दोष।
तुलसी तृष्णा त्यागि के, गहै सील संतोष॥ 16॥

गोस्वामी जी कहते हैं कि वे संतजन जगत में दूसरों को तारने वाले जहाज हैं, जिनके मन में राग-द्वेष नहीं हैं और तृष्णा त्यागकर शील-संतोष की रहनी में जीते हैं।

सील गहनि सब की सहनि, कहनि हिये मुख राम।
तुलसी रहिये यहि रहनि, संत जनन को काम॥ 17॥

शील ग्रहण करना, सबकी बातें सह लेना। सहना अमृत है, सहना साधना है। सहने वाला सिद्धि पाता है और असहनशील दो कौड़ी का है। मुख से राम कहे और हृदय में राम की स्थिति रहे, आत्मस्थिति रहे। तुलसीदास जी कहते हैं कि संत जन का यही काम है। इसी रहनी में मंगल है।

निज संगी निज सम करत, दुर्जन मन दुख दून।
मलयाचल हैं सतंजन, तुलसी दोष बिहून॥ 18॥

सच्चे संत अपने साथियों को अपने समान बना लेते हैं, और दुर्जनों के मन के दुख को दूना बढ़ा देते हैं। लेकिन संतजन तो मलयाचल हैं, दोष बिहून हैं। यह तो लोगों द्वारा ग्रहण करने का अपना-अपना विचार है। जो जैसा समझता है, वैसा ग्रहण करता है। जो ऐसे संतों के पास रहने वाले हैं, वे अपना मन देते हैं तो वे उन्हीं के समान हो जाते हैं। जो दुर्जन हैं, वे उन्हें देख-देख कर जलते हैं। परंतु संत तो मलयगिरि के समान निर्मल एवं शीतल हैं।

कोमल वाणी संत की, स्रवत अमृतमय आइ।
तुलसी ताहि कठोर मन, सुनत मैन होइ जाइ॥ 19॥

संतों की वाणी सदैव कोमल होती है। वह अमृत के समान झरती है। ऐसी मधुर वाणी सुनकर कठोर मन भी पिघले मोम के समान कोमल हो जाता है।

अनुभव सुख उत्पत्ति करत, भय भ्रम धरइ उठाइ।
ऐसी वाणी संत की, जो उर भेदै आइ॥ 20॥

संत की वाणी अनुभव-सुख उत्पन्न करती है। अनुभव-सुख शांति-सुख है। मन में कोई विकार न हो, तब चित्त निरांत शांत हो जाता है और यह सर्वोच्च स्थिति है। मौत के समय यही होगा, सारी नाड़ियां सिमट जायेंगी और थोड़ी देर में शरीर शून्य हो जायेगा। जिसको स्वरूप बोध पक्का निश्चय है, वह तो समझ लेता है कि मेरा पक्का भवन बना हुआ है। वह इस शरीर रूप कच्चे भवन को छोड़कर आत्मस्थिति रूप पक्के भवन में सदा के लिए स्थिर हो जायेगा। वह उसी की प्रतीक्षा में रहता है। बाहर के उत्सव को वह तुच्छ समझता है। विदेहमोक्ष होने के समय को वह परम उत्सव का दिन समझता है। अतः संत की वाणी अनुभव-सुख उत्पन्न करती है और **भय भ्रम धरइ उठाइ।** भय और भ्रम को मन से अलग उठा कर धर देती है। संत की वाणी का कोई मनन करे तो उसके मन में कोई भय न रहेगा। क्या छूटेगा? अपना कुछ है ही नहीं। और भ्रम कुछ है नहीं। बाहर से कुछ पाना नहीं और मेरा कुछ नहीं है। मुझे तो मेरी

स्वरूपस्थिति प्राप्त है। संत की वाणी मिल जाय और हृदय को भेद डाले, तो भय-भ्रम दूर हो जायेगा और अनुभव-सुख उत्पन्न होगा।

सीतलवाणी संत की, ससि हूँ ते अनुमान।
तुलसी कोटि तपन हरै, जो कोइ धारे कान॥ 21॥

ऐसा अनुमान किया जाता है कि संतों की वाणी चन्द्रमा से भी अधिक शीतल है। अगर कोई उसे धारण कर ले तो उसकी करोड़ों तपन बुझ जाय। यह महिमा-कथन नहीं, वास्तविकता है। यदि आदमी उनकी वाणियों को सच्चे दिल से धारण करे तो उसके मानसिक ताप मिट जाते हैं।

पाप ताप सब सूल नसावै। मोह अन्ध रवि वचन बहावै॥
तुलसी ऐसे सद्गुण साधू। वेद मध्य गुण विदित अगाधू॥ 22॥

संतों की ज्ञानप्रवाह वाणी सूर्यवत ज्योतित होती है। वह मोह की अंधियारी को नष्ट कर देती है और सुनने वाले के मन के पापजनित ताप और पीड़ा को नष्ट करती है। गोस्वामी जी कहते हैं कि संतजन इस प्रकार सद्गुण संपन्न होते हैं। उनके अगाध सद्गुणों का वेद-शास्त्रों में वर्णन किया गया है।

तन करि मन करि वचन करि, काहू दूषत नाहिं।
तुलसी ऐसे संतजन, राम रूप जग माहिं॥ 23॥

जो शरीर से, मन से तथा वाणी से किसी पर दोषारोपण नहीं करते। गोस्वामी जी कहते हैं, ऐसे संतजन संसार में रामरूप हैं। वैसे तो न दूसरों का दोष कहो न सुनो। अपना ही दोष बहुत है। उसे देखो, सोचो और निकालो। संतत्व का लक्षण है कि किसी का दोष न देखे न कहे।

मुख दीखत पातक हरै, परशत कर्म बिलाहिं।
वचन सुनत मन मोह गत, पूरब भाग्य मिलाहिं॥ 24॥

ऐसे संतों के दर्शन से मन के मैल दूर होते हैं, उनके चरण स्पर्श से

सारे कर्म विलीन होते हैं, और उनके वचन सुनने से मन मोह से मुक्त हो जाता है। पूर्व जन्म का सौभाग्य जिसका होता है उसको ऐसे संतजन मिलते हैं।

अति कोमल अरु विमल रुचि, मानस में मल नाहिं।

तुलसी रत मन होइ रहै, अपने साहिब माहिं॥ 25॥

गोस्वामी जी कहते हैं कि संत का मन अत्यन्त कोमल और विनम्र होता है। उनकी रुचि पवित्र होती है तथा उनके मन में मैल नहीं होता है। उनका मन सदैव अपने साहेब, स्वामी, आत्माराम में लीन रहता है।

अपना साहेब, अपना राम, अन्तरात्मा है। संत सदैव राम में, आत्मा में रमे हैं। कबीर साहेब भी कहते हैं, "राम न रमसि कौन डण्ड लागा, मरि जैबै का करिबे अभागा॥ बीजक, शब्द 21॥

जाके मन ते उठि गई, तिल तिल तृष्ना चाहि।

मनसा वाचा कर्मना, तुलसी वन्दत ताहि॥ 26॥

जिसके मन से तिल-तिल करके तृष्णा-चाहना मिट गयी है, जो निर्चाह हो गये हैं। गोस्वामी जी कहते हैं, मैं उनकी मन से, वचन से और कर्म से वंदना करता हूं। जो मनुष्य सब प्रकार की तृष्णाओं से सर्वथा छूट गया, वही जीवन्मुक्त है। वह जगत वंदनीय है।

कंचन काँचहि सम गनै, कामिनी काष्ठ पषान।

तुलसी ऐसे संतजन, पृथ्वी ब्रह्म समान॥ 27॥

जो कंचन को कांच के समान और कामिनी को काष्ठ-पाषाण के समान मानते हैं। गोस्वामी जी कहते हैं–ऐसे संतजन पृथ्वी पर ब्रह्म के समान हैं। **पृथ्वी ब्रह्म समान** अर्थात पृथ्वी पर वही ब्रह्म है, परमात्मा है। निष्काम पुरुष ही परमात्मा है।

कंचन को मृतिका करि मानत। कामिनि काष्ठ सिला पहिचानत॥

तुलसी भूलि गयो रस एहा। ते जन प्रकट राम की देहा॥ 28॥

गोस्वामी जी कहते हैं कि जो सोना को मिट्टी और कामिनी को लकड़ी-पत्थर के समान देखते हैं, जो विषयों के रस को भूल गये हैं, वे रामस्वरूप हैं, प्रत्यक्ष परमात्मा हैं।

आकिंचन इन्द्री दमन, रमन राम इकतार।
तुलसी ऐसे संतजन, विरले या संसार॥ 29॥

इस संसार में ऐसे संत विरले हैं जो थोड़ी वस्तुओं से निर्वाह लेते हैं, इंद्रिय-मन पर विजयी हैं और निरंतर राम में रमते हैं।

आकिंचन अकिंचन, दरिद्र, अपने को दरिद्र रखे। अर्थात साधक व्यक्तिगत जीवन के लिए ज्यादा धन न रखे। बस, कामचलाऊ धन रखे। "आवा गवा खर्च, साधू का मामला फर्च॥" जो कुछ आये, मिले वह खर्च हो जाय, बस। अपने व्यक्तिगत जीवन के लिए ज्यादा न जोड़े, जो कुछ ज्यादा हो वह सामाजिक हो। यही रहनी गृहस्थ अपनाये तो वे भी बड़े सुखी रहेंगे। गृहस्थी में जो भी संपत्ति हो वह पूरे परिवार की हो। गृहस्थी में भी जहां व्यक्ति द्वारा ज्यादा जोड़ा गया, वहां राग-द्वेष बढ़ेंगे, परिवार टूटेगा, घर फूटेगा। आत्मसंयम और आत्मलीनता जीवन का परम फल है।

अहंवाद मैं तैं नहीं, दुष्ट संग नहिं कोइ।
दुख ते दुख नहिं उपजै, सुख ते सुख नहिं होइ॥ 30॥
सम कंचन काँचै गिनत, सत्रु-मित्र सम दोइ।
तुलसी या संसार में, कहत संतजन सोइ॥ 31॥

जिनमें अहंकारपूर्ण मैं-मैं, तू-तू की भाषा नहीं है, किसी प्रकार दुर्जनों की संगत नहीं है, जो प्रतिकूलता आने पर दुखी नहीं होते और अनुकूलता आने पर सुख में हर्षित नहीं होते, जो कंचन-कांच को समान समझते हैं, धन-दौलत की लिप्सा नहीं रखते, शत्रु-मित्र में समता का बरताव करते हैं, गोस्वामी जी कहते हैं कि इस संसार में वे ही संत कहलाने योग्य हैं।

विरले विरले पाइए, माया त्यागी संत।

तुलसी कामी कुटिल कलि, केकी केक अनंत॥ 32॥

गोस्वामी जी कहते हैं, माया-त्यागी संत संसार में विरले-विरले होते हैं। "केकी केक" मोर-मोरिन देखने में सुन्दर, बोलने में मधुर किंतु खाते हैं सांप, ऐसे ही सुन्दर वेष बनाये कामी-कुटिल लोग कलिकाल में बहुत घूमते हैं।

मैं-तैं मेट्यो मोह तम, उग्यो आत्मा भानु।
संत राज सो जानिए, तुलसी या सहिदानु॥ 33॥

गोस्वामी जी कहते हैं संत सम्राट उन्हें समझो जिनके हृदय में आत्मज्ञान का सूरज उग आया है और उनके जीवन से अहंता-ममता, मोह-वैर की अंधियारी मिट गयी है।

को वर्णै मुख एक, तुलसी महिमा संत की।
जिन्ह के विमल विवेक, सेष महेस न कहि सकत॥ 34॥

गोस्वामीजी कहते हैं कि एक मुख से संत की महिमा कौन कह सकता है? जिसके निर्मल विवेक है, ऐसे संतों की महिमा हजार मुख से शेष जी भी नहीं कह सकते और शिव जी भी नहीं कह सकते।

शेष जी हजार फण वाले माने गये हैं। पूरी दुनिया में कुछ रूपक युक्त कथन होते हैं, कुछ कहावतें होती हैं। वैसे ही यह कहावत है कि शेष जी हजार मुख वाले हैं। किसी की महिमा में कहना है तो कहते हैं, भई, शेष जी भी अपने हजार मुख से नहीं कह सकते। कोई शेष जी ऐसा नहीं रहा होगा जो हजार मुख वाला हो। कहने का मतलब है संत की महिमा अनंत है, अवर्णनीय है।

महि पत्री करि सिंधु मसि, तरु लेखनी बनाइ।
तुलसी गनपति सो तदपि, महिमा लिखी न जाइ॥ 35॥

गोस्वामी जी कहते हैं पृथ्वी को कागज बनाया जाय, समुद्र को स्याही बनाया जाये, कल्पवृक्ष को कलम बनाया जाय और गणेश जी को लेखक बनाया जाय। क्योंकि वे बड़े लेखक थे, और महाभारत लिखे थे। कहावत

है कि वेदव्यास जी बोलते गये और गणेश जी लिखते गये। गणेश जी द्वारा भी संत की महिमा लिखी नहीं जा सकती है। जितनी लिखे अधूरी ही रहेगी।

धन्य धन्य माता पिता, धन्य पुत्र वर सोइ।
तुलसी जो रामहि भजै, जैसेहुँ-कैसेहुँ होइ॥ 36॥

गोस्वामी जी कहते हैं, वे माता-पिता धन्य हैं, जिन्होंने संत पैदा किया, और वह पुत्र धन्य है जो संत रूप प्रकट हुआ। चाहे जैसे, चाहे जहां पैदा हुआ हो; यदि राम-भजन करता है, साधना में लीन है, वह धन्य है।

तुलसी जाके बदन ते, धोखेहु निकसत राम।
ताके पग की पगतरी, मेरे तन को चाम॥ 37॥

गोस्वामी जी कहते हैं कि जिसके मुख से धोखे से भी राम शब्द निकलता है, मैं अपने शरीर के चाम को निकाल कर उसके जूते बनाकर उसके पैरों में डालना चाहता हूं।

तुलसी भगत सुपच भलो, भजै रैन दिन राम।
ऊँचो कुल केहि काम को, जहाँ न हरि को नाम॥ 38॥

गोस्वामी जी कहते हैं भगत हो, भले ही वह भंगी हो, वह उत्तम है, क्योंकि वह रात-दिन राम का भजन करता है। यदि कोई ऊंचे कहे जाने वाले कुल का है, किंतु हरिभजन-रहित है तो किस काम का है?

अति ऊंचे भूधरिन पर, भुजगन के स्थान।
तुलसी अति नीचे सुखद, ऊख अन्न अरु पान॥ 39॥

गोस्वामी जी कहते हैं बहुत ऊंचे स्थान पर्वत पर सांप रहते हैं, और अति नीची जमीन में, समतल भूमि में ईख और अन्न पैदा होते हैं और पानी टिकता है। कल्पित जाति-वर्ण से कल्याण होने वाला नहीं है, अपितु विनम्रता, भक्ति, स्वरूपज्ञान और वैराग्य से कल्याण होता है।

(कबीर मंदिर, प्रीतमनगर, इलाहाबाद

3 अक्तूबर, 1995 ई०)

नवां प्रवचन

अति अनन्य जो हरि को दासा। रटै नाम निसि दिन प्रति स्वासा॥

तुलसी तेहि समान नहिं कोई। हम नीके देखा सब कोई॥ 40॥

गोस्वामी जी कहते हैं कि जो राम का एकनिष्ठ भक्त है और हर क्षण प्रति श्वास राम में रम रहा है, उसके समान कोई नहीं है, मैं बहुत देखभाल तथा समझ-बूझ कर कहता हूं।

यदपि साधु सबही विधि हीना। तद्यपि समता के न कुलीना॥

यह दिन रैन नाम उच्चरै। वह नित मान अगिन मह जरै॥ 41॥

यद्यपि साधु लौकिक दृष्टि से उच्च कहे जाने वाले कुल में जन्मा न हो, धनवान न हो, विद्वान न हो, लोगों में प्रतिष्ठित न हो, गुरु न हो, और सब प्रकार से लौकिक दृष्टि से हीन लगता हो; तो भी ऊंचे कहे जाने वाले उसकी समता में नहीं हो सकते। क्योंकि यह हरिभजन में लगा है, आत्मशोधन में लगा है, और ऊंची जाति का कहा जानेवाला रात-दिन अहंकार में जलता है कि मैं ऊंची जाति का हूं।

मैं मनुष्य हूं, यही वास्तविकता है। जिसको ऊंची जाति कहा जाता है, उसमें जन्मने से कोई कल्याण नहीं, और जिसको नीची जाति कहा जाता है, उसमें जन्मने से कोई अकल्याण नहीं। कल्याण तो वासना के त्याग से होगा। मानव जीवन ही ऊंचा जीवन है। मानव में क्या छोटा-बड़ा है?

दास रता यक नाम सो, उभय लोक सुख त्यागि।

तुलसी न्यारो ह्वै रहै, दहै न दुख की आगि॥ 42॥

गोस्वामी जी कहते हैं, रामभक्त सांसारिक सुख और स्वर्ग के कल्पित सुख को त्याग कर राम भजन में लीन है। वह सारे अहंकारों से अलग हो

जाता है। वह दुख की आग में नहीं जलता।

अहंकार ही दुख की आग है। यहां तक ग्रंथकार ने संतों की महिमा में कहा है। आगे शांति का वर्णन करते हैं।

रैन को भूषन इंदु है, दिवस को भूषन भानु।
दास को भूषन भक्ति है, भक्ति को भूषन ज्ञानु॥ 43॥
ज्ञान को भूषन ध्यान है, ध्यान को भूषन त्याग।
त्याग को भूषन सांतिपद, तुलसी अमल अदाग॥ 44॥

गोस्वामी जी कहते हैं, रात की शोभा चंद्रमा है, दिन की शोभा सूरज है। साधक की शोभा भक्ति करना है, भक्ति की शोभा आत्मज्ञान है। आत्मज्ञान की शोभा ध्यान में डूबना है, ध्यान के परिपक्व होने की शोभा त्याग है; और त्याग की शोभा निर्मल, निर्दोष शांति-पद की प्राप्ति है।

सच्चा साधक समर्पित और सेवा-परायण होता है। उसकी शुद्ध भक्ति से सद्गुरु का दिया हुआ आत्मज्ञान जीवन में चरितार्थ होता है। आत्मज्ञान का अर्थ ही है कि सबकुछ चित्त से उतार कर केवल आत्मलीनता की साधना में लग जाना। जो अंतर्मुख हो जाता है वह विषय-भोगों एवं मान-प्रतिष्ठा के मोह को त्याग देता है। जिसकी सारी सांसारिक ऐषणाएं नष्ट हो गयीं, वह निर्मल, निर्दोष शांति-सागर में निमज्जन करता है।

कोई कहे कि मैं भक्ति करता हूं और उसको ज्ञान नहीं है, तो उसकी भक्ति भक्ति नहीं है। कोई कहे मुझे ज्ञान है लेकिन चित्त में एकाग्रता नहीं है, ध्यान नहीं सधता है, तो ज्ञान अधूरा है। कोई कहे ध्यान है, एकाग्रता है और जीवन में त्याग नहीं है तो ध्यान अधूरा है। कोई कहे मैं त्यागी हूं और अशांत है तो त्यागी कहां है? केवल बाह्य त्याग त्याग नहीं है, जब तक अन्तर अहंता-ममता का त्याग न हो। त्याग से निश्चित है चित्त शांत होता है, और जीवन की परम उपलब्धि शांति है।

अमल अदाग सांति पद सारा। सकल कलेस न करत प्रहारा॥
तुलसी उर धारै जो कोई। रहै आनन्द सिन्धु मह सोई॥ 45॥

शांति पद निर्मल निर्दोष है और जीवन का सार है। सारे क्लेश मिलकर उस पर प्रहार नहीं कर सकते, शांतात्मा को विचलित नहीं कर सकते। **बिजली परे समुद्र में कहा सकेगी जारि।** समुद्र के समान शांतात्मा पुरुष कभी विचलित नहीं होते। गोस्वामी जी कहते हैं, इस शांति को जो अपने हृदय में धारण करता है वह सदैव आनन्द-सागर में रहता है। जीवन का चरम और परम फल शांति है। सारा संसार कूड़ा-कबाड़ है, शांति ही जीवन का परम सुख है।

विविध पाप संभव जो तापा। मिटहिं दोष दुख दुसह कलापा॥
परम सांति सुख रहै समाई। तहँ उत्पात न भेदै आई॥ 46॥

परम शांति-सुख में जो लीन रहता है, उसके मन में कोई उपद्रव प्रवेश नहीं कर सकता। उसके अनेक पाप-कर्मों से उत्पन्न ताप, दोष, असह दुखों के समूह नष्ट हो जाते हैं। हमारे मन में पाप होता है, इसलिए ताप होता है, दुख होता है। किसी ने कितना सटीक कहा है–

देह को मैं मानना, सबसे बड़ा यह पाप है।
सब पाप इसके पुत्र हैं, सब पाप का यह बाप है॥

मैं देह हूं, यह मेरी देह है, यह मानना सबसे बड़ा पाप है। इस भव की वस्तुओं में ममता करना महा अपराध ही नहीं, महा पाप है। देखते-ही-देखते सब कुछ खो जाने वाला है। इस संसार में जो ममता बनाकर बैठा है, वह कितना धोखे में जी रहा है। मन के संताप इसी से होते हैं। हमारी ममता के फल में संताप होते हैं। ममता मिट जाने पर संताप की कोई संभावना नहीं होती।

शरीर में ऐसे-ऐसे दुख उत्पन्न होते हैं, जो दुसह होते हैं। शारीरिक व्याधि कभी-कभी किसी को ऐसी होती है जो असहनीय होती है। एक व्यक्ति शारीरिक रोग से इतने पीड़ित थे, उनके शरीर में इतनी जलन थी कि वे सह नहीं पाये और नदी में कूदकर शरीर छोड़ दिये। एक व्यक्ति शारीरिक व्याधि से इतने पीड़ित थे कि फांसी लगा लिये।

दुनिया के राष्ट्राध्यक्ष इस पर बारम्बार सोचते हैं कि आत्महत्या के लिए कानून बनाया जाय। व्यक्ति शारीरिक व्याधि से अत्यन्त पीड़ित हो तो वह

कानूनन आत्महत्या कर सके। परंतु इसके दुरुपयोग के डर से ऐसा नहीं करते। न सहने योग्य मानसिक दुख है। मानसिक दुख से पीड़ित निन्नाबे प्रतिशत लोग हैं। प्रिय-वियोग, अप्रिय-संयोग, मन का न होना, इन्हें आदमी सोच-सोचकर अपने दुख को दुसह बना लेता है। थोड़ी-थोड़ी बात को लेकर लोग पीड़ित हो जाते हैं। यह अज्ञान से संभूत है। शारीरिक पीड़ा प्रारब्धवशात है, जो आपको सहना होगा।

तुलसी ऐसे शीतल संता। सदा रहैं यहि भांति एकंता॥
कहा करे खल लोग भुजंगा। कीन्हें गरल सील जो अंगा॥ 47॥

गोस्वामी जी कहते हैं कि उपर्युक्त शांति को धारण करने वाले संत सदैव एकान्त में रहते हैं। जो अपने अंगों को विषमय बनाये हैं, ऐसे सर्प-मय दुष्ट लोग, उन संतों का क्या कर सकते हैं। कबीर साहेब कहते हैं–

दुनिया सेती दोस्ती, परत भजन में भंग।
एका एकी राम से, या संतन के संग॥ कबीर साखी॥

दुनिया से दोस्ती करने पर भजन में भंग पड़ता है। इसलिए एकाएकी राम भजन में लगे रहो या संतों की संगत में लगे रहो। संत-संग साधक के लिए अभेद्य कवच है। संतों की संगत में रहकर कमजोर साधक भी संयम बना सकता है, और बलवान साधक अकेले रहकर भटक सकता है। जैसे पानी में रहकर कमल हरे-भरे रह सकते हैं, और पानी से अलग होते ही सूख जायेंगे। विशाल देव भी कहते हैं–

शुद्ध संग करि करि रहे, निश्चय भाव सुदेश।
टूटे बंधन जीव के, छूटे जगत कुदेश॥ विशाल वचनामृत॥

सदैव शुद्ध संग करके रहे और सुदेश, आत्मभाव का निश्चय रहे। स्वदेश = आत्मदेश, आत्मस्थिति ही सुदेश है। स्वरूपस्थिति में निवास करने के लिए मन में पक्का निश्चय रहे, तब जीव का बंधन छूटता है, और कुदेश छूटता है।

यह जगत ही कुदेश है। यह शरीर भी कुदेश है। यह शरीर परमाणुओं की ढेरी है। यहां सब कुछ बदलता है। अपने हाथ में कुछ है ही नहीं।

यहां जितना अहंकार करो, उतना थप्पड़ खाओ। क्षमा नाम की चीज इस प्रकृति में कहीं नहीं है। यहां मोह तथा अहंकार करके केवल चांटे खाना है। यह सारा संसार कुदेश है। सुदेश अपना आत्मदेश है। सारे संकल्पों को त्यागकर ही अपने देश में विश्राम हो सकता है। अतएव सारे संकल्पों को छोड़-छोड़कर रहना और अपने आत्म-देश में निवास करना है।

गुरु या संत के चित्र पर दृष्टि रखना, उनका ध्यान करना, बिन्दु पर दृष्टि रखना, शब्द श्रवण करना ये सब प्रारम्भिक साधनाएं हैं। जो राजपथ है, वह है संकल्पों का त्याग करना। यह बहुत सरल है। बिस्तर पर बैठे हो और संकल्पों का त्याग करते रहो, देखो अंदर क्या उठ रहा है? क्या-क्या इच्छा उठ रही है? काम-वासना तो नहीं उठ रही है? लोभ-वासना तो नहीं उठ रही है? ईर्ष्या तो नहीं उठ रही है? संकल्पों के त्याग का मतलब है कि कुछ भी संकल्प उठे उसे त्यागना है। क्योंकि संकल्प मात्र का त्याग समाधि है। लेकिन आरम्भिक दशा में तो विकारों का त्याग करे और अंत में सारे संकल्पों का त्याग करे। सारे संकल्पों का त्याग ही सच्चा भजन है। साधक साधु संगत में रहे और समय-समय से अकेला शांत हो जाय। **कहा करैं खल लोग भुजंगा।** खल लोग तो सांप की तरह हैं। वे क्या कर सकते हैं। **कीन्हें गरल शील जो अंगा।** जो अपने शरीर को विष से भरे हुए बना रखे हैं, और ईर्ष्या, द्वेष, निंदा, क्रोध में जलते हैं ऐसे मनुष्य निर्मल, शीलवान संतों का क्या बिगाड़ सकते हैं? जो शीतल हो गया है, जिसके मन में अहंकार का उद्रेक नहीं होता है, उसको कोई क्षुब्ध नहीं कर सकता। इसी कसौटी के लिए सद्गुरु कबीर साहेब ने यह साखी कही है–

समुझि बूझि जड़ हो रहै, बल तजि निर्बल होय।
कहहिं कबीर ता संत का, पला न पकरै कोय॥ बीजक, साखी 167॥

सब कुछ समझबूझ कर अनाड़ी हो जाय। अहंकार हमें शीतल नहीं होने देता है। चाहे किसी भी चीज का अहंकार है, अपने बड़प्पन का अहंकार, विद्वता का अहंकार, गुरुपने का अहंकार, महंतपने का अहंकार, सब झूठा है। सब अहंकार छोड़कर शीतल-शांत हो जाय, फिर उसका पल्ला कोई नहीं पकड़ सकता है।

अति सीतल अति ही अमल। सकल कामना हीन।

तुलसी ताहि अतीत गनि। वृत्ति सांति लयलीन॥ 48॥

उनको गुणातीत एवं मुक्त समझना चाहिए जो अत्यंत शीतल और अत्यन्त निर्मल हैं, समस्त कामनाओं से हीन हैं और आत्मस्थिति में लौलीन हैं।

संत अति शीतल, अति निर्मल और समस्त कामनाओं से मुक्त होते हैं। हमें अपने को कसना चाहिए। अगला आदमी क्षुब्ध हो जाय तो हम सह लें। सह लिये तो अपनी विजय है। फिर वह समझेगा। **अति ही अमल।** कोई दोष नहीं। एकदम निर्मल, एकदम निष्कपट चित्त साधक का होना चाहिए। **सकल कामना हीन।** सारी कामनाओं से हीन होना चाहिए, और शांति वृत्ति में लौलीन होना चाहिए। **तुलसी ताहि अतीत गनि।** गोस्वामी जी कहते हैं, उसको अतीत समझना, गुणातीत समझना जो अत्यंत शीतल, अति निर्मल, समस्त कामनाओं से हीन और आत्मस्थिति में, स्वरूपस्थिति में लौलीन रहता है। उसकी और कसौटी गोस्वामी जी ने आगे दो चौपाइयों में दी है।

जो कोइ कोप भरै मुख बैना। सन्मुख हतै गिरा सर पैना॥

तुलसी तऊ लेस रिसि नाहीं। सो सीतल कहिये जगमाहीं॥ 49॥

कोई अपने मुख से कोप भरकर वाणी बोल रहा हो, कटु शब्द कह रहा हो। वह वाणी कैसी हो जैसे–**गिरा सर पैना,** तीखे बाण के प्रहार के समान। **तुलसी तऊ लेस रिसि नाहीं।** गोस्वामीजी कहते हैं, इतने पर भी थोड़ा भी क्रोध न जगे **सो सीतल कहिये जग माही।** उसको जगत में शीतल कहना चाहिए। इस कसौटी में हमें अपने को कसना चाहिए।

यहां सब किसलिए आये हैं? साधु बनकर पुजाने के लिए आये हैं! यह महा धोखा है। साधु क्या, हम एक साधारण मनुष्य हैं। हम सेवा, साधना, भक्ति करके अपने मन को मांजने के लिए आये हैं। किन्तु हम धोखे में पड़ जाते हैं। कुछ दिनों में साधु के कपड़े मिल गये, फिर मान लिये कि हम साधु हैं। अब एक ही काम बचा है, लोग हमें पूजें। और कोई उद्देश्य नहीं है। ऐसे लोग गड्ढे में जाते हैं। अपने आपको पूर्ण सम्हाले बिना गुरु बनना बहुत दुखदायी है। गुरु न बने तो अच्छा है। अपने आप

को सम्हाल ले तो भी स्वच्छन्द रहे। गुरु बनकर तो झंझट ही है। चेलों का मन देखो, समझाओ, बुझाओ, रास्ते पर लगाओ, जो न माने उसे भी समझाओ, यह सब परेशानी ही तो है। यह झंझट है। इसलिए गुरु बनने से बचना चाहिए। जो लोग गुरु बन गये, वे झेलें। लेकिन उनको अपने को सम्हाल कर रहना चाहिए, कहीं फिसलन न हो। ज्यादातर गुरु लोग तो खीझते रहते हैं, पीड़ित रहते हैं, असंतुष्ट रहते हैं।

जिज्ञासा, मुमुक्षा, साधुत्व, संतत्व और गुरुत्व ये पांच क्रम हैं। ज्ञान की इच्छा होना जिज्ञासा है, किसी-किसी के मन में ज्ञान की जिज्ञासा होती है। ज्ञान को जानकर मोक्ष की इच्छा होना मुमुक्षा है। जिनको मुमुक्षा होती है, उनमें कुछ साधक होते हैं। जो साधना करते हैं, वे साधु हैं। मन के युद्ध में कभी हार जाते हैं, और कभी जीत जाते हैं। पूर्ण रूप से मन पर विजय हो गयी तब संत हैं। जो कभी उद्वेगित नहीं होता, कामवासना का प्रभाव मन में नहीं और किसी प्रकार का विकार नहीं, उसका मन निर्मल होता है। यह संत दशा है। इस संत दशा में ठहर कर ही गुरुवाई का काम करना चाहिए। इसलिए गुरु बनने से बहुत डरना चाहिए। गुरु बनने से अपना तो कोई लाभ नहीं है, यह पक्का है। जो गुरु बनता है वह समझ ले, गुरुवाई से अपना रत्तीभर लाभ नहीं है। हां, सावधान न रहे तो नुकसान हो सकता है।

हम साधु मार्ग में अपना कल्याण करने के लिए आये हैं। यहां न तो गुरु बनने आये हैं, न संस्था चलाने आये हैं, न शिष्य बनाने आये हैं, न पुस्तक लिखने आये हैं, न प्रचार-प्रसार करने आये हैं, न भाषण करने आये हैं, किन्तु मोक्ष लेने आये हैं, सारी वासनाओं को त्याग कर अपने जीवन को निर्मल कर कृतार्थ होने आये हैं। यह सच है कि कोई गुरु हमें आधार देता है और वह सब कुछ सहकर निभाता है, तब जिज्ञासुओं का हित होता है। इसमें गुरु आधार होता है, ग्रंथ आधार होता है, आश्रम आधार होता है, उपदेश आधार होता है, शिक्षा आधार होती है। आधार लेना-देना संबंध है। उसी मोक्ष के लिए यह सब कुछ है। किन्तु मोक्ष पीछे हो गया और मठ बड़ा हो गया, प्रचार बड़ा हो गया, पुजापा बड़ी हो गयी। जब यह स्थिति आती है, तो साधक उत्तेजना में पड़ा रहता है। जो काम करना चाहिए वह नहीं करता है। जो हमारा सम्मान करते हैं, उनसे हमारा

कोई लाभ होने वाला नहीं है। जो हमारा अपमान करते हैं, कटु कहते हैं, उनसे हमारा लाभ होगा। क्योंकि हम अपने दोष को देखकर सुधारेंगे। इसलिए हम अपने को सम्हालें। इस मार्ग में जो भी आये हैं वे समझें कि अपने मन को मांजकर साफ कर लेना है, निर्मल कर लेना है, मोक्ष प्राप्त कर लेना है। जिसके अंदर कूड़ा-कचड़ा होता रहता है वह नहीं समझता है कि हम किसलिए आये हैं। जो सब स्थितियों को सहकर शीतल, शांत-निर्मल चित्त रहता है, गोस्वामी जी कहते हैं वही संत है।

सात दीप नौ खण्ड लौं, तीनि लोक जग माहिं।
तुलसी सांति समान सुख, अपर दूसरो नाहिं॥ 50॥

सात द्वीप, नौ खण्ड और तीन लोक संसार में शांति के समान और कोई दूसरा सुख नहीं है। राम सब सुख के घर हैं तो शांति की क्या जरूरत है? समाधान यह है–

जहां तोष तहाँ राम है, राम तोष नहीं भेद।
तुलसी पेखि गहत नहिं, सहत विविध विधि खेद॥

सार यह है कि संतोष एवं शांति ही राम की प्राप्ति है। राम तो स्वतः आत्मा है। जब वह जगत-कामना त्यागकर पूर्ण संतुष्ट हो गया तो यही राम की प्राप्ति है।

जहाँ सांति सद्गुरु की दई। तहाँ क्रोध की जर जरि गई॥
सकल कामवासना बिलानी। तुलसी यहै सांति सहिदानी॥ 51॥

जहां सद्गुरु की दी हुई शांति है वहां क्रोध की जड़ (अहंता-ममता) जल जाती है और सारी कामनाएं-वासनाएं विनष्ट हो जाती हैं। गोस्वामी जी कहते हैं कि शांति का यही लक्षण है–पूर्ण निष्काम और निर्मान हो जाना।

सद्गुरु स्वयं शांत स्वरूप हैं। उनके दर्शन तथा सान्निध्य से निश्छल साधक अपने आप शांति पायेगा। सद्गुरु शांति देते हैं यह बात सच है। सद्गुरु की तरफ कोई उन्मुख न हो तो साथ में रहते-रहते भी कोरा का कोरा रहेगा। जहां सद्गुरु ने शांति दी, उस साधक की क्रोध की जड़ जल

गयी, और सारी काम-वासनाएं विलीन हो गयीं, यही शांति की पहिचान है।

तुलसी सुखद सांति को सागर। संतन गायो करन उजागर॥
तामें तन मन रहै समोई। अहं अगिन नहिं दाहै कोई॥ 52॥

गोस्वामी जी कहते हैं कि शांति-समुद्र ही सुखदाई है। संतों ने इसकी महिमा उघाड़ कर गायी है। इसमें यदि कोई अपने तन-मन को लीन कर दे, तो उसे किसी प्रकार से भी अहंकार की आग जला नहीं सकती।

अहंकार की अगिन में, दहत सकल संसार।
तुलसी बाँचे संत जन, केवल सांति अधार॥ 53॥

गोस्वामी जी कहते हैं कि अहंकार की आग में सारा संसार जल रहा है। संसार में शांति का आधार लेकर केवल संत उससे बचते हैं। जो अहंकार से बच रहा है वही संत है। कपड़े से कोई संत नहीं होता। जो शांति में है, वही संत है। सद्गुरु रामरहस साहेब ने कहा है–

हंता मा सब ही पड़े, हंता देखे साध।
हंता ते न्यारा रहे, गुरुमुख दृष्टि अबाध॥ पंचग्रंथी॥

सारा संसार अहंकार में पड़ा है, जो अपने अहंकार को देखे और उसे त्यागे वह संत है।

महां सांति जल परसि कै, सान्त भये जन जोइ।
अहं अगिन ते नहिं दहै, कोटि करे जो कोइ॥ 54॥

महान शांति रूपी जल का स्पर्श करके जो शांत हो गये, चाहे कोई करोड़ों उपाय करे, परन्तु वे अहंकार की अग्नि में नहीं जलते।

तेज होत तन तरनि को, अचरज मानत लोइ।
तुलसी जो पानी भया, बहुरि न पावक होइ॥ 55॥

उन शांत सन्तों का शरीर सूर्य का-सा तेजवान हो जाता है। उनका

प्रभाव बढ़ जाता है। गोस्वामी जी कहते हैं कि जो जल के समान शीतल हो गया है, वह आग के समान दाहक नहीं हो सकता।

यद्यपि सीतल सम सुखद, जग में जीवन प्रान।
तदपि सांत जल जनि गनौ, पावक तेज प्रमान॥ 56॥

यद्यपि शांतात्मा पुरुष शीतल होते हैं, सम और सुखद होते हैं। शांति ही उनका जीवन प्राण होता है। लेकिन साधारण जल के समान उनको मत समझना। वे आग के समान तेजवान होते हैं।

जरै बरै अरु खीजि खिझावैं। राग-द्वेष महँ जन्म गवाँवैं॥
सपनेहु सांति नहीं उन देही। तुलसी जहाँ तहाँ व्रत एही॥ 57॥

गोस्वामी जी कहते हैं कि कुछ लोग ऐसे होते हैं जो अपने मन के उद्वेगों की आग में जलते हैं, स्वयं उद्वेगित रहते हैं और दूसरों को उद्वेगित करते हैं। जिनके मन की ऐसी दशा है उनके जीवन में स्वप्न में भी शांति नहीं हो सकती।

दोहा

सोइ पंडित सोइ पारखी, सोई संत सुजान।
सोई सूर सचेत सो, सोई सुभट प्रमान॥58॥
सोइ ज्ञानी सोई गुनी, सोई दाता ध्यानि।
तुलसी जाके चित्त भई, राग द्वेष की हानि॥59॥

गोस्वामी जी कहते हैं, वही पंडित है, वही पारखी है, वही समझदार है, वही सचेत और सुभट शूरवीर है, वही प्रामाणिक है, वही ज्ञानी है, वही गुणवान है, वही दानी है और वही ध्यानी महात्मा है, जिसके चित्त से राग-द्वेष पूर्ण निवृत्त हो गये हैं।

कबीर साहेब का शरीरांत होने के बाद गोस्वामी जी जन्म लेते हैं और कुछ वर्षों के बाद उनका कार्य-क्षेत्र काशी होता है। उन्हें अनेक बार पारखी संत कबीर चौरा में मिले होंगे। पंडितों और ब्रह्मज्ञानियों का गढ़

काशी रहा ही। गोस्वामी जी ने मानो उन सबके बीच यह सहज सत्यता की बात कही कि पंडित, पारखी, बुद्धिमान, वीर, सावधान, प्रामाणिक, ज्ञानी, गुणी, दाता और ध्यानी वही है जिसके मन में राग-द्वेष नहीं हैं।

राग-द्वेष की अग्नि बुझानी। काम क्रोध वासना नसानी॥

तुलसी जबहिं सांति गृह आई। तब उर ही उर फिरी दोहाई॥ 60॥

गोस्वामी जी कहते हैं कि जिनके चित्त के राग-द्वेष की आग बुझ गयी है, काम-क्रोध की वासना नष्ट हो गयी है और हृदय रूपी घर में शांति पूर्ण रूप से आ गयी है; उनके हृदय में पूर्ण स्वराज्य हो गया। आत्मा द्वारा आत्मा में संतुष्ट हो गया, **तब उर ही उर फिरी दोहाई।** अर्थात दिल ही में दिल शांत हो गया। कबीर साहेब भी कहते हैं–

जग लग दिल पर दिल नहीं, तब लग सब सुख नाहिं।

चारिउ युगन पुकारिया, सो संशय दिल माहिं॥

(बीजक, साखी 296)

फिरी दोहाई राम की, गे कामादिक भाजि।

तुलसी ज्यों रवि के उदय, तुरत जात तम लाजि॥ 61॥

गोस्वामी जी कहते हैं, राग-द्वेष मिटकर शांति प्राप्त होने पर हृदय में राम की दोहाई फिर गयी और काम-क्रोधादि भाग गये, जैसे सूर्य के उदय होते ही तुरंत अंधकार नष्ट हो जाता है।

राम अंतरात्मा है, उसका साम्राज्य हृदय में हो गया, फिर विश्राम ही विश्राम है। कबीर साहेब भी कहते हैं–

निर्भय भये तहाँ गुरु की नगरिया, सुख सोवै दास कबीरा हो।

(बीजक, कहरा 7)

निर्भय होकर, आत्मस्थ होकर गुरु की नगरी में विश्राम करो। गुरु की नगरी सगुण रूप से सत्संग है और निर्गुण रूप में स्वरूपस्थिति है।

यह विराग संदीपनी, सुजन सुचित सुनि लेहु।

अनुचित बचन बिचारि के, जस सुधारि तस देहु॥ 62॥

गोस्वामी जी कहते हैं, ऐ सज्जनो! सावधानी से इस वैराग-संदीपनी को सुन लो, इसमें यदि अनुचित वचन हो, तो उसे जैसा उचित समझो वैसा सुधार कर रख दो।

गोस्वामी जी जैसे महान पुरुष के वचनों में मैं क्या सुधारूं। हां! मैं इतना ही कहूंगा कि उन्होंने जो श्रीराम को अपना परम आराध्य मान लिया है, उसी को साधक शोध लें। हृदय निवासी चेतन राम ही सार्वभौमिक उपासनीय है। श्रीराम हमारे पूज्य हैं, पितामह हैं, आदरणीय हैं। लेकिन न वे अनंत ब्रह्माण्ड नायक हैं और न हमारा उद्धार करने वाले। उद्धार सद्गुरु का आधार लेकर स्वयं साधना से होता है। अनंत ब्रह्माण्ड नायक कोई ऐसा नहीं है जो पूरी सृष्टि को चलाता हो। न ही महाराज श्रीराम, न महाराज श्री कृष्ण और न कोई अन्य चलाता है। किन्तु सृष्टि एवं जगत प्रकृति के नियमों से स्वयमेव चल रहा है। जो हमारा लक्ष्य है, वह हृदय निवासी राम में विश्राम है। तथ्य गोस्वामी जी भी कहते हैं–

सात द्वीप नौखण्ड में, तीन लोक जग माहिं।
तुलसी सांति समान सुख, अपर दूसरा नाहिं॥

जहाँ तोष तहाँ राम है, राम तोष नहिं भेद।
तुलसी पेखि गहत नहिं, सहत विविध विधि खेद॥

(कबीर मंदिर, प्रीतमनगर, इलाहाबाद
15 अक्तूबर, 1995 ई०)